Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 5 | ISSN : 2581- 6306

'नौकर की कमीज़', व्यवस्था और मुक्तिबोध

आराधना साव
नेट/जेआरएफ़, शोधार्थी, हिन्दी विभाग, प्रेसीडेंसी विश्वविद्यालय, कोलकाता

Article Info
Volume 3, Issue 5
Page Number: 61-66
Publication Issue :
September-October-2020

Article History
Accepted : 01 Oct 2020
Published : 09 Oct 2020

शोध-सार - हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकर, कथाकार तथा कवि विनोद कुमार शुक्ल काफी लंबा समय कवि मुक्तिबोध के साथ बिताए थे, यही कारण है कि उनपर मुक्तिबोध का काफी प्रभाव पड़ा । उन्होने स्वयं कई साक्षात्कारों में यह तथ्य स्वीकार किया है कि उनके लेखन पर मुक्तिबोध का काफी प्रभाव है । अतः इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए मैंने प्रस्तुत शोध-पत्र में विनोद कुमार शुक्ल के प्रसिद्ध उपन्यास 'नौकर की कमीज़' पर मुक्तिबोध के प्रभाव की पड़ताल करने की कोशिश की है एवं इसी आधार पर निष्कर्ष तक पहुंची हूँ ।

मूल-शब्द - व्यवस्था, निम्नमध्यवर्ग, संघर्ष, शोषण, नौकरशाही, नौकर, विनोद कुमार शुक्ल, मुक्तिबोध ।

हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'कविता क्या है ?' निबंध में लिखा है कि "सभ्यता की वृद्धि के साथ-साथ ज्यों-ज्यों मनुष्यों के व्यापार बहुरूपी और जटिल होते गए त्यों-त्यों उनके मूल रूप बहुत कुछ आच्छन्न होते गए ।"१ 1979 में प्रकाशित विनोद कुमार शुक्ल जी के पहले उपन्यास 'नौकर की कमीज़' पर उपरोक्त पंक्तियाँ बिल्कुल सटीक बैठती है । इस उपन्यास में भारतीय नौकरशाही तंत्र के मकड़जाल एवं बाबुओं के घर और बाहर की दयनीय एवं विवश ज़िंदगी तथा अफसरशाही की क्रूर एवं संवेदनहीन मानसिकता के चित्रण में विनोद कुमार शुक्ल जी ने अपने गहरे अनुभव और संवेदनशीलता का परिचय दिया है । सभ्यता के आधुनिक दौर में शोषण का रूप भी सभ्य हो गया है जहां मनुष्य के लोभी, कपटी, अहंकारी आदि रूप सभ्यता के आवरण के पीछे छिप जाता है । इसी आवरण को विनोद कुमार शुक्ल जी 'नौकर की कमीज़' उपन्यास में उधेड़ते-बुनते हैं और इस उधेड़बुन के दौरान उपन्यास के कुछ धागे अप्रत्यक्ष रूप से मुक्तिबोध से जाकर भी जुड़ जाते हैं जिसकी हम यहाँ पड़ताल करेंगे लेकिन उससे पहले 'नौकर की कमीज़' उपन्यास के संबंध में थोड़ा जान लेना आवश्यक होगा ।

'नौकर की कमीज़' उपन्यास की पूरी कहानी उपन्यास के नायक संतू बाबू के इर्द-गिर्द घूमती है । उपन्यास की शुरुआत संतू बाबू की मनस्थिति के चित्रण के साथ होती है जहां वे अपनी जीवन की विभिन्न परिस्थितियों और संघर्षों के साथ चिंतन-मनन करते हुए थोड़ी सुकून और शांति पाने की लगातार जद्दोजहद करते दिखाई पड़ते हैं । वे जिस दफ्तर में काम करते हैं वहाँ कमोबेश हर अधीनस्थ कर्मचारी का यही हाल होता है जहां वे अपने से ऊपर अफसर की ग़ुलामी करने के लिए मजबूर होते हैं । यहाँ तक की संतू बाबू को किराए के घर में रहने के लिए भी मालिक और मालकिन की जी हुज़ूरी करनी पड़ती है । संतु बाबू के साहब ने अपने घर के नौकर के लिए एक

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

कमीज़ बनवा रखी थी और उसे पहनने वाला उनका नौकर पूरी तरह से उनका ग़ुलाम था । एक दिन वह नौकर गायब हो जाता है और परिस्थिति उस नौकर की कमीज़ को पहनने के लिए संतु बाबू को सामने ला खड़ा करता है । इन सारी परिस्थितियों से संतू बाबू और उनके दफ्तर के बाकी कर्मचारी कैसे जूझते हैं और इनसे कैसे संघर्ष करते हैं तथा पार पाते हैं, उपन्यास इसी को लेकर आगे बढ़ता है ।

विनोद कुमार शुक्ल जी के लेखन के विशिष्ट अंदाज़ ने साहित्य-लेखन परंपरा को एक नई दिशा दी है । इसके साथ ही उनका लेखन समकालीनता को एक नई परिभाषा देता है । उन्होने 'नौकर की कमीज़' उपन्यास से भारतीय मध्यवर्गीय नौकरी पेशा जीवन की विसंगतियों और विडंबनाओं को नया स्वर दिया है । इस उपन्यास के संबंध में डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है, "कुल घटना घर से दफ्तर जाने और दफ्तर से घर आने तक सीमित है । पति दफ्तर में साहब का बेगार करता है और पत्नी घर में मकान-मालकिन का हुक्म बजाती है । आज का निम्नवर्गीय व्यक्ति अभाव, घुटन और दैन्य को भोगते हुए भी संभ्रांत जीवन बिताने की ललक पाले रहता है । उसकी छोटी-छोटी इच्छाएँ भी पूरी नहीं हो पातीं । लेखक ने निम्नमध्यवर्ग की इसी पीड़ा और अंतर्विरोध को संवेदना के स्तर पर पूरी मार्मिकता के साथ व्यंजित किया है ।"२ वस्तुतः इस उपन्यास में कमीज़ वह संरचना है जो हमें व्यवस्था की सच्चाईयों को दिखलाती है और यह भी स्पष्ट करती है कि नौकर की कमीज़ पहनने के लिए बुद्धिजीवी वर्ग आतुर नहीं तो कम से कम मजबूर अवश्य है । इस उपन्यास में बड़े साहब ने जो कमीज़ बनवा रखी है उसमें एक आदमी ही नहीं बल्कि एक पूरा का पूरा वर्ग फिट होता दिखाई देता है । दरअसल 'कमीज़' उस क्रूर व्यवस्था का प्रतीक है जिसमें बेगारी प्रथा चरम पर है, नौकरशाही तंत्र के ताने-बाने से निर्मित 'कमीज़' वह साँचा है जिसमें इस व्यवस्था में आने वाले प्रत्येक नौकर के लिए फिट होना या ढलना अनिवार्य है । फलतः संवेदनहीन अफसरशाही के शिकंजे में हजारों संतू बाबू जैसे लोग मजबूरी में कुढ़ते रहते हैं । विनोद कुमार शुक्ल जी ने इस उपन्यास में स्वतंत्र्योत्तर भारतीय नौकरशाही में मौजूद ग़ुलामी के इसी मनोविकास की गहरी छानबीन की है और इसी प्रयास में संवेदना एवं अनुभूति के धरातल पर निम्न मध्यवर्गीय ज़िंदगी में बहुत अंदर तक चले गए हैं । रमेशचन्द्र शाह ने लिखा है, "एक हिंदुस्तानी निम्न-मध्यमवर्गीय घर की जो भी स्थितियाँ होती हैं, हो सकती हैं, विनोदकुमार शुक्ल ने उनका लघुतम समापवर्त्य इस उपन्यास में रच दिया है और वह हमारे अपने अनुभव से सिर्फ मेल ही नहीं खाता- उसे रूपांतरित भी कर देता है- हमारे आँख-कान लगा देता है ।"३ यही कारण है कि हम इस उपन्यास के प्रत्येक उस पात्र से जुड़ाव महसूस करते हैं जो जीवन जीने के लिए संघर्ष और अपनी परिस्थियों से जद्दोजहद करते नज़र आते हैं ।

'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' निबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं कि यदि रचनाकार केवल नायक की सफलता का पक्ष दिखाए तो नायक का सौंदर्यत्व एवं नायकत्व उभरकर सामने नहीं आ पाएगा । उदाहरण के लिए, श्रीराम का नायकत्व एवं सौंदर्य रावण से युद्ध के बाद ही अधिक उभरकर सामने आ पाता है । विनोद कुमार शुक्ल भी मध्यवर्गीय परिस्थितियों से जूझते संतू बाबू का संघर्ष 'नौकर की कमीज़' उपन्यास में दिखाते हैं जो उसके नायकत्व को उभारकर पाठकों के समक्ष रखता है । निम्नमध्यवर्गीय व्यक्ति या संतू बाबू जैसे लोग जीवन के एक-एक क्षण को समेटने और उसे जीने के लिए तड़पता है लेकिन समाज, व्यवस्था और उसकी विडंबनाओं में इस प्रकार फँसता चला जाता है कि उसके दोनों हाथ समय को पकड़ने के लिए बस उठे के उठे रह जाते हैं । इस प्रक्रिया में एक इंसान दूसरे इंसान का जबड़ा कब, कैसे और कितना कसता चला जाता है, समझना मुश्किल है और उसका विरोध करना तो उससे भी मुश्किल है । उपन्यासकर संतू बाबू के इन निम्न्मध्यवर्गीय स्थितियों, विडंबनाओं एवं शोषण को दिखाकर नौकरशाही में संतू बाबू की दयनीय स्थिति को और मजबूत करते हैं ।

संतू बाबू के घर का टपकता छत, मंहगाई, परिवार की ज़िम्मेदारी आदि परिस्थितियों के कारण ही संतू बाबू का वेतन उनके लिए कटघरा बन जाता है जिसे तोड़कर वे पार नहीं कर पाते हैं, क्योंकि आधुनिक दौर में मनुष्य की आर्थिक सुरक्षा उसकी मूलभूत आवश्यकताओं में से एक बन गया है । उपन्यास में संतू बाबू कहता है, "मेरा वेतन एक कटघरा था, जिसे तोड़ना मेरे बस में नहीं था । यह कटघरा मुझमें कमीज़ की तरह फिट था । और मैं अपनी पूरी ताकत से कमजोर होने के हद तक अपना वेतन पा रहा था ।"४ यहाँ कटघरा यानि वेतन और कमीज़ प्रतीक रूप में दिखाई पड़ता है जो वेतन भोगी नौकर का दायरा और हैसियत बताता है । यह वेतन ही है जो व्यवस्था के खिलाफ व्यक्ति की जुबान पर ताला जड़ देता है । उपन्यास में बड़े बाबू कहते हैं कि दफ्तर में जबान को मुंह में नहीं, टेबिल की ड्रार में रखकर काम करना पड़ता है । उपन्यास की यह पंक्ति बाबुओं और नौकरीपेशा लोगों की दयनीय स्थिति को साफ करती है और उनकी स्थिति पर एक ज़बरदस्त उदाहरण पेश करती है । अतः 'नौकर की कमीज़' उपन्यास में नौकरीपेशा लोगों और भारतीय निम्न-मध्यवर्गीय परिवार का संघर्ष, अंतर्द्वंद्व और जीवन की विडंबनाएं प्रमुख तत्व है जो कि मुक्तिबोध की रचनाओं का भी प्रमुख तत्व रहा है ।

दरअसल,विनोद कुमार शुक्ल का केवल जन्म ही मुक्तिबोध के गाँव राजनांद में नहीं हुआ था बल्कि उनपर कवि मुक्तिबोध का काफी गहरा प्रभाव भी था । विनोद जी ने काफी लंबा समय मुक्तिबोध के साथ बिताया था । यही कारण है कि विनोद जी का लेखन कर्म भी मुक्तिबोध से काफी प्रभावित है । बल्कि यह बात उन्होने कई साक्षात्कारों में स्वयं स्वीकार किया है । अपने एक संस्मरण में उन्होने लिखा है, "मेरे लेखन में मुक्तिबोध के प्रभाव से तो कोई इंकार कर ही नहीं सकता । लेखन पर एक दूसरे का प्रभाव पड़ता ही है और ये प्रभाव एक अच्छी बात है । अकेला लेखन जैसा कुछ भी नहीं होता । लेखन किसी भी समय हमेशा मिलजुल करके होता है और असल में लेखन मिलजुल कर एक-दूसरे के प्रभाव का ही परिणाम होता है ।"५ वस्तुतः उनका लिखा 'नौकर की कमीज़' भी उनके इस कथन से अछूता नहीं है ।

मुक्तिबोध जीवन पर्यंत व्यवस्था और पूंजीवाद के खिलाफ लड़ते रहें और इसी के परिणामस्वरूप 'चाँद का मुंह टेढ़ा है' जैसी रचना भी प्रकाश में आई जिसमें मुक्तिबोध ने व्यवस्था की कुरूपता को उजागर किया है । व्यवस्था की कुरूपता की परतें 'नौकर की कमीज़' में भी खुलती हैं ।

अगर हम मुक्तिबोध की सबसे प्रसिद्ध कविता 'अंधेरे में' की भी बात करे तो पाएंगे कि 'नौकर की कमीज़' एवं 'अंधेरे में' में काफी कुछ साम्य है । 'अंधेरे में' का नायक गहरे अंतर्द्वंद्व में फंसा होता है । कविता में दो 'मैं' उभरकर सामने आता है जिसमें एक 'मैं' वह है जो कवि है और दूसरा 'मैं', जो कवि बनना या होना चाहता है । हिन्दी के आलोचक गोरखनाथ ने लिखा है, "इस कविता(अंधेरे में) में आनेवाले 'मैं' और 'वह' मध्यवर्गीय व्यक्ति के अंतर्द्वंद्व, आत्मसंघर्ष की प्रक्रिया से गुजरते हुए वर्गान्तरित होने का भाव प्रकट करते हैं । कविता में आनेवाले पागल की आत्मभर्त्स्ना वास्तव में आदर्शवादी, सिद्धांतवादी भारतीय मध्यवर्ग के मन का यथार्थ है ।"६ 'नौकर की कमीज़' में भी संतू बाबू गहरे अंतर्द्वंद्व में फंसे होते हैं । उपन्यास के आरंभ में उनका बार-बार घर से बाहर एवं बाहर से घर आना, न चाहते हुए भी साहब के बंगले पर काम के लिए जाना, घास उखाड़ने वाला प्रसंग आदि उनके गहरे अनतर्द्वंद्व को दर्शाता है । दरअसल, रचनाकार के भीतर प्रतिरोध अधिक है, इसलिए वह अपने अंदर अपना ही एक प्रतिपक्ष बना लेता है अर्थात उसके अंदर का अंतर्द्वंद्व ही उसका प्रतिपक्ष बन जाता है । कहना न होगा कि 'नौकर की कमीज़ में' में संतू बाबू और 'अंधेरे में' के नायक, दोनों के भीतर एक मजबूत प्रतिपक्ष कार्य कर रहा होता है ।

इसके अतिरिक्त 'अंधेरे में' कविता में व्यवस्था के खिलाफ जन-जन की एकजुट संघर्ष की शक्ति चित्रित है तो 'नौकर की कमीज़' में भी शोषण की प्रतीक 'कमीज़' को जलाने में गौराहा बाबू, देवांगन बाबू, बड़े बाबू एवं संतू बाबू की एकजुटता दिखाई पड़ती है ।

सन् 1962-64 के चीन युद्ध के बाद एवं जन संघ का कट्टर नीतियों के साथ उदय के बाद देश में जो अंधेरा छाया, कवि मुक्तिबोध उस 'अंधेरे' की बात करते हैं । तो 'नौकर की कमीज़' में 1975 में लागू आपातकाल और फिर सन् 1977 में जनता दल के गठबंधन सरकार के बाद भारतीय नौकरशाही तंत्र में बढ़ी अराजकता, मनमानी एवं आमजन की त्राहिम स्थिति को उपन्यासकार दर्शाता है । दोनों ही रचना अपने समय की परिस्थितियों को बदलने के लिए संघर्षरत है, मगर दोनों रचनाओं का नायक परिस्थितियों को बदलने में असमर्थ दिखाई पड़ता है ।

मुक्तिबोध मार्क्सवादी विचारधारा के समर्थक थे । इसका प्रभाव भी विनोद कुमार शुक्ल एवं उनकी रचनाओं में मिलता है । 'नौकर की कमीज़' उपन्यास में मंहगू का संतू बाबू के घर पर आने वाला प्रसंग इसका अच्छा उदाहरण है । संतू बाबू कहते हैं, "पत्नी चाय लेकर आई । पत्नी ने मुझे वैसा ही कप दिया, जैसा मंहगू का था । यह देखकर मुझे खुशी हुई । कप लेकर वह बोरे में बैठने जा रहा था, तब "कुर्सी पर बैठ जाओ मंहगू" मेरे मुंह से निकला ।"७ एक अन्य जगह पर उपन्यासकार लिखते हैं, "मुझे चंद्रमा आकाश में गोल कटी हुई खिड़की की तरह लगता था जिससे आकाश की आड़ में छुपी हुई दुनिया का उजाला आता था । सूर्य का भी यही हाल था । फर्क सिर्फ दिन और रात का था ।"८ उपन्यास में आगे संतु उस गोल कटी हुई खिड़की को तोड़कर अंधेरे को खिड़की के उस पार की रौशनी से दूर कर देने की बात करता है । उपन्यास में और आगे संतु बाबू कहते हैं-"हालत सुधारने के लिए अधिक से अधिक मेहनत करने के उपाय पर मुझे विश्वास नहीं था । कुदाली चलाने वाला मजदूर दिन-रात कुदाली चलाकर भी अपनी हालत सुधार नहीं सकता था । संपत के विचार से मैं सहमत नहीं हो पाता था । दरअसल बाज़ार में मेहनत की कोई कीमत नहीं है । आदमी की अधिक से अधिक आमदनी और कम से कम आमदनी में भयानक अंतर था ।"९ कहना न होगा कि उपर्युक्त कथनों में क्रमशः वर्ग संरचना (class structure) को तोड़ने एवं धन का समान वितरण (equal distribution of money) जैसे मार्क्सवादी सिद्धांतों का अप्रत्यक्ष जिक्र एवं समर्थन है । हालांकि चंद्रमा को गोल कटी खिड़की के रूप में देखना एक फेंटेसी हो सकती है मगर उपन्यास के टेक्सचर को देखते हुए चंद्रमा के रूप में गोल कटी खिड़की के इस पार के अंधेरे और उस पार के उजाले को दो वर्गों की बीच की दूरी के रूप में देखना अधिक संगत लगता है ।

व्यवस्था एवं नौकरशाही तंत्र की भयावहता हमें महंगू, बड़े बाबू और संतु बाबू की स्थितियों पर गौर करने से साफ-साफ दिख पड़ता है । व्यवस्था की मार सीधे इनके दिमागी स्थिति को प्रभावित करती है । एक तरफ महंगू राम-राम साहब बोलते-बोलते अपनी दिमागी संतुलन खो बैठता है और पागल हो जाता है, दूसरी तरफ बड़े बाबू भी अपने बेटे के चले जाने के बाद उसके लौट आने के लिए जो-जो करते हैं, वह उनकी सामान्य मानसिक स्थिति को नहीं दर्शाता है । जो नहीं है उसका उनको बार-बार भ्रम होता है । और यह एक सीजोफ्रेनिया का भी लक्षण है । एक स्वास्थ्य संबंधी वैबसाइट के अनुसार, "इस रोग में, लोग वास्तविकता को असामान्य रूप से व्याख्या करते हैं। स्कीज़ोफ्रेनिया के परिणामस्वरूप मतिभ्रम, भ्रम और बेहद अनियंत्रित सोच और व्यवहार का कुछ संयोजन होता है जो रोजाना कामकाज को खराब करता है, और अक्षम हो सकता है।"१० वस्तुतः बड़े बाबू को भी बार-बार भ्रम होता है कि उनका बेटा आ गया है और वे अजीबोगरीब हरकत करते हैं । वहीं दूसरी ओर संतु बाबू बार-बार स्वप्न देखते हैं और महसूस भी करते हैं कि वे किसी गहरी खाई में गिरते चले जा रहे हैं । अगर गौर करे तो हम पाएंगें कि

उपर्युक्त सभी पात्रों की मानसिक स्थिति का एक तार मुक्तिबोध से जाकर जुड़ता है । हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'नई कविता और अस्तित्ववाद' में लिखते हैं कि मुक्तिबोध सीजोफ्रेनिया नामक बीमारी से पीड़ित थे । हालांकि इस बात को बाद में कई आलोचकों ने विरोध करके नकार दिया जिसमें डॉ. नामवर सिंह जैसे आलोचक भी शामिल हैं, मगर मुक्तिबोध की कविताओं के अध्ययन करने के बाद उनके अंतर्द्वंद्व और उनके भीतर की बेचैनी को अनदेखा नहीं किया जा सकता जिसे रामविलास शर्मा ने सीजोफ्रेनिया का नाम दिया । यही बेचैनी और अंतर्द्वंद्व 'नौकर की कमीज़' के पात्रों में दिखती हैं । मुक्तिबोध की कविताओं और विनोद कुमार शुक्ल की रचनाओं खासकर 'नौकर की कमीज़' की पृष्ठभूमि में एक चीज जो समान है, वह है भारतीय मध्य एवं निम्नवर्ग, उनकी बेचैनी, उनका अंतर्द्वंद्व ।

'नौकर की कमीज़' उपन्यास में कई प्रसंग निम्नमध्यवर्गीय पीड़ा, घुटन, मजबूरी आदि तथा सम्पन्न वर्ग की सुविधाभोगिता और चालाकी प्रकट करता है । संतु बाबू की पत्नी का डॉक्टरनी के यहाँ काम करना एवं बाई साहब का चालाकी से काम निकलवाना इसके उदाहरण हैं । लेखक लिखते हैं, "अगर बाई साहब को मालूम हो जाए कि तुम्हारे चौके के पाटे पर बैठकर खाना खा ले तो आप उनके गुलाम हो जाएंगे तो घिन लगने के बावजूद वे जरूर खाएँगी ।"११ यह वाक्य उच्च वर्ग की स्वार्थलोलुपता को ही दर्शाता है । उच्च वर्ग, एवं व्यवस्था तथा शासन तंत्र की मिलीभगत ही जमाखोरी, कालाबाजारी, मुनाफाखोरी आदि को अंजाम देते हैं । जहां एक ओर संतु बाबू के घर में सब्जी भी रोज नहीं बनती वहाँ दूसरी ओर बाई साहब के घर में काजू-बादाम सड़ रहा होता है । एक जगह उपन्यासकार आकाल एवं हरे-भरे खेत की चर्चा एक साथ करते हैं । वे लिखते हैं, "....लड़के का नाम टोटके के लिए 'यथार्थ' भी रखा जा सकता था और लड़की का नाम टोटके के लिए 'विचार' । यथार्थ अकाल नहीं है । यथार्थ हरे-भरे खेत हैं ।"१२ वस्तुतः हरे-भरे खेत होने के बावजूद अकाल जैसी स्थिति है, इसका कारण जमाखोरी, मुनाफाखोरी एवं कालाबाजारी ही है । सीधी-सपाट चलने वाली आम लोगों के जीवन के यथार्थ को विनोद कुमार शुक्ल अपनी उपन्यास में रचनात्मकता में तब्दील करते हैं । रमेशचन्द्र शाह लिखते हैं, "लेखक ने ऐसा किया और ऐसा करके उसने पाया कि यह यथार्थ वैसा नहीं है जैसा दिखता है । वह और भी बहुत कुछ है जिसे हमारी संवेदना ने खोजा नहीं, हमारी कल्पना ने छुआ नहीं । यही हमारे लोग हैं, यही उनका जीवन है, पर उन्हें अपने जिन गुणों और संभावनाओं की स्वयं ही उस तरह चेतना नहीं, वह चेतना उस जीवन और उसके पात्रों के बीच डूबे हुए लेखक के भीतर जागने लगती है ।"१३ यही कारण है कि संतु बाबू में कई बार हमें विनोद कुमार शुक्ल बोलते नज़र आते हैं । यथार्थ की यह चेतना मुक्तिबोध की रचनाओं में भी हमें मिलती है ।

निष्कर्षतः 'नौकर की कमीज़' भारतीय नौकरशाही एवं भ्रष्ट व्यवस्था की एक ऐसी विडम्बना है जिससे हम आज भी मुक्त नहीं हो पाये हैं । इसकी जड़े जितनी बाहर दिखाई देती हैं, उससे भी अधिक भीतर फैली हुई हैं । और इसी व्यवस्था के खिलाफ मुक्तिबोध भी आजीवन लिखते रहें ।

टी.एस.इलियट ने अपनी परंपरा और निर्वैयक्तिकता के सिद्धान्त में कहा था कि महान रचनाकार अपनी परंपरा से कुछ न कुछ ग्रहण अवश्य करता है अथार्त उसपर उसकी पूर्ववर्ती रचनाकारों का प्रभाव अवश्य होता है । विनोद कुमार शुक्ल एवं उनकी रचनाओं पर भी मुक्तिबोध का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है और उनका उपन्यास 'नौकर की कमीज़' भी इससे अछूता नहीं है । मुक्तिबोध ने अपनी रचनाओं में व्यवस्था के साथ-साथ भारतीय मध्य एवं निम्नमध्यवर्ग के संघर्षों एवं अंतर्द्वंद्वों को भी केंद्र में रखा जो कि विनोद कुमार शुक्ल की 'नौकर की कमीज़' एवं अन्य कई रचनाओं के भी केंद्र में दिखाई देती है । मध्य एवं निम्नमध्यवर्ग का दिवास्वप्न कितना ही लुभावना क्यों

न हो, उसका जीवन परिस्थितियों से लड़ने एवं संघर्ष करने में ही बीतता है । वस्तुतः दफ्तर एवं अपनी जीवन की परिस्थितियों से जूझते हुए भी व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह के आरंभ की दास्तां है 'नौकर की कमीज़' ।

संदर्भ

१. शुक्ल रामचंद्र.(1988). कविता क्या है?. नामवर सिंह (सं.), रामचन्द्र शुक्ल संचयन(पृ.20). साहित्य अकादेमी.
२. तिवारी रामचन्द्र.(2014). हिन्दी का गद्य-साहित्य(नौवा संस्करण). विश्वविद्यालय प्रकाशन. पृ.240.
३. शाह रमेशचन्द्र. दो नए उपन्यास. परमानंद श्रीवास्तव (सं.), समकालीन हिन्दी आलोचना(पृ.345). साहित्य अकादेमी.
४. शुक्ल विनोद कुमार.(1994). नौकर की कमीज़.राजकमल पेपरबैक्स. पृ-18.
५. https://www.bbc.com/hindi/india/2014/09/140912_muktibodh_vinod_kumar_shukl_rns
६. गोरखनाथ.(2019). मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष. वी.जी.गोपालकृष्णन (सं.), मुक्तिबोध : विचार और विवेक(पृ.27). वाणी प्रकाशन.
७. शुक्ल विनोद कुमार.(1994). नौकर की कमीज़.राजकमल पेपरबैक्स. पृ-203.
८. वही, पृ-113.
९. वही, पृ-118.
१०. https://www.credihealth.com/blog/hi/schizophrenia-meaning-in-hindi
११. शुक्ल विनोद कुमार.(1994). नौकर की कमीज़. राजकमल पेपरबैक्स. पृ-225.
१२. वही, पृ.-221.
१३. शाह रमेशचन्द्र. दो नए उपन्यास. परमानंद श्रीवास्तव (सं.), समकालीन हिन्दी आलोचना(पृ.343). साहित्य अकादेमी.